Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्म अकर्म विवेचन

मंजीत कुमार वर्मा
शोधार्थी,
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झॉसी,
उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 4 Issue 1
Page Number: 58-60

Publication Issue :
January-February-2021

Article History
Accepted : 02 Jan 2021
Published :12 Jan 2021

सारांश – भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में जैसा बतलाया है उसके अनुसार कर्म करना संभव है तथा आवश्यक भी है। इसके विपरीत कर्मों को विकर्म कहते हैं इसी तरह कर्म न करना अकर्म कहलाता है। इन कर्मों को करने से क्या होता है क्या नहीं होता है यह बात शास्त्र के द्वारा ही समझना संभव है। कर्म के स्पष्ट दिखाई देने वाले लौकिक परिणम चित्तशुद्वि और इसी तरह पुण्य आदि अलौकिक परिणाम में फर्क है। अतः कर्म की गति गहन (गूढ़) है। किया जाने वाला कर्म यदि निष्काम बुद्वि से किया जाए तो उसका जीव को बन्धन नहीं होता है। अतः ऐसे कर्म करने पश्चात् भी न करने के समान होता है।

मुख्य शब्द – श्रीकृष्ण, श्रीमद्भगवद्गीता, कर्म, अकर्म, अर्जुन।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म अकर्म का विस्तृत विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में कर्म अकर्म एवं विकर्म क्या है यह बताते हैं, जो किया जा सके शास्त्रसम्मत हो एवं संसार बन्धन से मुक्ति दिलाती है उसे कर्म कहते हैं, जैसे यज्ञादि, अकर्म से तात्पर्य है जो विधि सम्मत न हो, 'निषिद्ध कर्म' जैसे–ब्राह्मण हनन आदि।

" किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।"

श्रीकृष्ण जी– अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि कर्म क्या है और अकर्म क्या है इस विषय में विद्वानों को भी निश्चित निर्णय करना संभव नही होता है। ऐसे कर्म तत्व को मैं तुम्हे समझाकर भलीभॉति बताता हूं जिसे जानकर हे अर्जुन! तुम जन्ममरण के अशुभ कर्मबन्धन से मुक्त हो जाओगे।

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

कर्मणो ह्यपि बोधव्यं बोधव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणष्च बोधव्यं गहना कर्मणो गतिः।।

कर्म का स्वरुप भी जानना चाहिए, अकर्म का स्वरुप भी सझना चाहिए और विकर्म अर्थात् विकल्प शून्य विशेष कर्म जो आप्तपुरुषों द्वारा होता है, उसे भी जानना चाहिए! क्योंकि कर्म की गति गहन है। महापुरुषों को न तो कर्म करने से कोई लाभ है और न छोड़ने से कोई लाभ ही है, फिर भी लोक संग्रह के लिए परजनहिताय के लिए कर्म करते है! ऐसा कर्म विकल्पशून्य है, विशुद्व है और यही कर्म अवकर्म कहलाता है। इसमें ‘वि’ से तात्पर्य विशेषता से है जैसे– इसमें

“ कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्विमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।” 4/18

जो पुरुष कर्म में अकर्म देखे, कर्म माने अराधना अर्थात् अराधना करे और यह भी समझे करने वाला मैं नहीं हूॅ बल्कि गुणों की अवस्था ही चिन्तन में हमें नियुक्त करती है इन गुणों द्वारा प्रेरित होकर इष्ट द्वारा संचालित हूॅ–ऐसा देखें और जब इस प्रकार अकर्म देखने की क्षमता आ जाए और धारावाहिक रुप से कर्म होता रहे।

तभी समझना चाहिए कि कर्म सही दिशा में हो रहा है। वही पुरुष मनुष्यों में बुद्विमान है, मनुष्यों में योगी है,

परिणामतः आराधना ही कर्म है उस कर्म को करें और करते हुए अकर्म देखें कि मै तो यन्त्रमात्र हूॅ, करनेवाला इष्ट है मैं गुणों से उत्पन्न अवस्था के अनुसार ही चेष्ठाकर पाता हूँ। जब अकर्म की यह क्षमता आ जाए और लगातार (धारावाहिक) कर्म होता रहे तभी परमकल्याण की स्थिति दिलाने वाला कर्म हो पाता है। जब तक इष्ट रथी न हो जाए रोकथाम न करने लगे, तब तक साधना का आरम्भ सही मात्रा में नहीं होता। इसके पूर्व जो कुछ किया जाता कर्म में प्रवेश के प्रयास से अधिक कुछ भी नहीं है हल का सारा भार बैलों के कन्धों पर रहता है, फिर भी खेत की जुताई हलवाहे की देन है। ठीक इसी प्रकार साधन का सारा भार साधक के ऊपर ही रहता है किन्तु वास्तविक साधक तो इष्ट है जो उसके पीछे लगा हुआ है, जो उसका मार्गदर्शन करता है। जब तक इष्ट निर्णय न दे तब तक आप समझ ही न सकेंगे कि हमसे हुआ क्या? हम प्रकृति में भटक रहे हैं या परमात्मा में? इस प्रकार इष्ट के निर्देशन में जो साधक इस आत्मिक पथ पर अग्रसर होता है, अकर्त्ता समझकर जो निरन्तर कर्म करता है वही बुद्विमान है। किसी भी शारीरिक, वाचिक, तथा मानसिक कृति को कर्म कहते हैं। वे कर्म धर्मशास्त्र के अनुसार या जैसा भगवान श्रीकृष्ण बतलाते हैं या संत बतलाते हैं वैसा करना मनुष्य

के लिए बन्धन कारक है। पूर्व मीमांसा, पाराशर स्मृति, जैसी स्मृतियाँ या धर्मसिन्धु के समान धर्मग्रन्थों को प्रमाण मानकर उसके अनुसार कर्म करने वाले मनुष्य समय के साथ नमण्य हो जाते हैं।

इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में जैसा बतलाया है उसके अनुसार कर्म करना संभव है तथा आवश्यक भी है। इसके विपरीत कर्मों को विकर्म कहते हैं इसी तरह कर्म न करना अकर्म कहलाता है। इन कर्मों को करने से क्या होता है क्या नहीं होता है यह बात शास्त्र के द्वारा ही समझना संभव है। कर्म के स्पष्ट दिखाई देने वाले लौकिक परिणम चित्तशुद्धि और इसी तरह पुण्य आदि अलौकिक परिणाम में फर्क है। अतः कर्म की गति गहन (गूढ़) है। किया जाने वाला कर्म यदि निष्काम बुद्धि से किया जाए तो उसका जीव को बन्धन नहीं होता है। अतः ऐसे कर्म करने पश्चात् भी न करने के समान होता है।

पाद टिप्पणी

1— श्रीमद्भगवद्गीता
जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस गोरखपुर
2— संसारसागर का गीतादीपस्तंभ डा0 श्रीकृष्ण द0 देशमुख
चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी
3— यथार्थगीता श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट
4— श्रीमदभगवदगीता श्रीमच्छाड.करभाष्याऽऽनन्दागिरिव्याख्यायुता
आचार्य केशवलाल वि0 शास्त्री चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली